



A.F.R.

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय बिलासपुर,
डब्ल्यू. पी. सी. आर. सं. 566/2021

1. विरेंद्र चौरसिया पुत्र स्वर्गीय श्री नानकू प्रसाद चौरसिया लगभग 55 वर्ष, प्रोप्राएटर-चौरसिया विवाह उद्यान, रिंग रोड, मायापुर, अंबिकापुर, जिला-सरगुजा छत्तीसगढ़
2. सरोज साहू पुत्र श्री बैजनाथ प्रसाद साहू, लगभग 54 वर्ष, निवासी महामाया चौक, सदर रोड, अंबिकापुर, जिला सरगुजा छत्तीसगढ़
3. प्रकाश साहू पुत्र स्वर्गीय श्री रामनाथ साहू, लगभग 48 वर्ष निवासी हनुमान मंदिर के पास, बिलासपुर चौक, अंबिकापुर, जिला-सरगुजा छत्तीसगढ़

-----याचिकाकर्तागण

बनाम

1. छत्तीसगढ़ राज्य, -सचिव के माध्यम से, गृह विभाग, मंत्रालय, महानदी भवन, अटल नगर, रायपुर, जिला रायपुर छत्तीसगढ़
2. कलेक्टर सह जिला मजिस्ट्रेट, अंबिकापुर जिला-सरगुजा छत्तीसगढ़
3. पुलिस थाना अंबिकापुर थू-एस. एच. ओ. पुलिस थाना अंबिकापुर, जिला सरगुजा छत्तीसगढ़

-----उत्तरवादीगण

(वाद शीर्षक मामला सूचना प्रणाली से लिया गया है)

याचिकाकर्ता हेतु : श्री गौतम खेत्रपाल तथा श्री जितेंद्र श्रीवास्तव, अधिवक्ता।

उत्तरवादीगण हेतु : श्री एच.एस.अहलूवालिया, उपमहाधिवक्ता

माननीय श्री रमेश सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश

माननीय श्री एन.के.चन्द्रवंशी, न्यायाधीश

बोर्ड पर आदेश

रमेश सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश के अनुसार ,

21/08/2023

1. याचिकाकर्ताओं ने इस याचिका में निम्नलिखित अनुतोष हेतु प्रार्थना की है:-----

“10.1 इस माननीय न्यायालय के अवलोकन हेतु मामले के रिकार्ड मंगाना।

10.2 एक उचित रिट या आदेश जारी करना और घोषित करने कि दिनांक 04.07.2021 की प्रथम सूचना प्रतिवेदन (अनुलग्नक पी/1) अवैध है, जो विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है।



10.3 एक उपयुक्त रिट या आदेश जारी करने तथा 04.07.2021 (अनुलग्नक पी/1) की प्राथमिकी को रद्द करना।

10.4 मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों में उपयुक्त समझी जाने वाली कोई अन्य अनुतोष भी दी जा सकती है।"

2. याचिकाकर्ताओं द्वारा संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि वे अंबिकापुर, जिला सरगुजा के निवासी हैं तथा याचिकाकर्ता संख्या 1 रिंग रोड, अंबिकापुर में स्थित चौरसिया मैरिज गार्डन का मालिक है। याचिकाकर्ता सं. 2 हर्ष साहू के पिता हैं तथा याचिकाकर्ता सं. 3 वैशाली साहू के पिता हैं। हर्ष साहू तथा वैशाली साहू का विवाह संपन्न हुआ तथा विवाह समारोह चौरसिया मैरिज गार्डन, अंबिकापुर में होना था। छत्तीसगढ़ राज्य में कोविड-19 महामारी की स्थिति को देखते हुए, कलेक्टर-सह-जिला मजिस्ट्रेट को महामारी रोग अधिनियम, 1897 (संक्षेप में, 1897 का अधिनियम) और आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 (संक्षेप में, 2005 का अधिनियम) के प्रावधानों के तहत किसी भी क्षेत्र को नियंत्रण क्षेत्र घोषित करने के लिए अधिकृत किया गया था। सत्ता के उपरोक्त प्रतिनिधिमंडल के अनुसरण में प्रतिवादी नंबर 2 ने 11.04.2021 को सरगुजा जिले को एक नियंत्रण क्षेत्र घोषित किया। उपरोक्त घोषणा को बाद में कुछ छूटों तथा दायित्वों के साथ विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा बढ़ाया गया था। पहले के आदेश की निरंतरता में, प्रतिवादी संख्या 2 ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में, द.प्र.स अधिनियम 2005 के प्रावधानों के तहत एक अधिसूचना जारी की, जिहेतु 1897 के अधिनियम के साथ पढ़ा गया। उक्त अधिसूचना के अनुसार, कुछ नियम निर्धारित किए गए थे। उक्त विनियमों में से एक यह था कि विवाह समारोह कोविड-19 प्रोटोकॉल का पालन करते हुए आयोजित किए जाएंगे तथा भारत सरकार की अधिसूचना दिनांक 1 के अनुसार, समारोह में भाग लेने के लिए अधिकतम व्यक्तियों की सीमा 50 निर्धारित की गई थी तथा सभी व्यक्तियों को कोविड-19 परीक्षण से गुजरना होगा। तैयार संदर्भ हेतु अधिसूचना/आदेश दिनांक 28.05.21 का खंड 1.4 निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:---

"वैवाहिक कार्यक्रम निवास- गृह तथा होटल /मैरिज हाल में कोविड 19 प्रोटोकॉल का कड़ाई से पालन करने की शर्त पर आयोजित करने की अनुमति होगी. भारत सरकार, गृह मंत्रालय के आदेश क्रमांक 40-3/2020 डी म /1 ए दिनांक 20.04.2021 अनुसार आयोजन में शामिल होने वाले व्यक्तियों की कुल अधिकतम संख्या 50 रहेगी. वैवाहिक कार्यक्रम में सम्मिलित होने वाले सभी व्यक्तियों को कोरोना 19 टेस्ट करना अनिवार्य होगा. इसी प्रकार अन्त्येष्टि, दशगात्र मृत्यु सम्बन्धी कार्यक्रम में शामिल होने वाले व्यक्तियों की कुल अधिकतम संख्या 20 रहेगी

3. 04.07.2021 पर एक कोमल प्रसाद साहू, नायब तहसीलदार, अंबिकापुर ने एक रिपोर्ट दर्ज कराई कि 02.07.2021 पर चौरसिया मैरिज गार्डन में एक विवाह किया गया था। यह आरोप लगाया गया है कि उक्त विवाह में, दिनांकित 28.05.2021 अधिसूचना का उल्लंघन करते हुए, लगभग 1000 लोग एकत्र हुए थे। यह भी आरोप लगाया गया कि विवाह याचिकाकर्ता संख्या 2 तथा 3 के पुत्र तथा पुत्री के बीच किया गया था, जबकि विवाह उद्यान का स्वामित्व याचिकाकर्ता संख्या 1 के पास है। प्रथम सूचना प्रतिवेदन के अनुसार चूंकि



याचिकाकर्ताओं ने 28.05.2021 की अधिसूचना में निहित नियमों का उल्लंघन किया था, इसलिए उन्होंने स्वयं को दंडात्मक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी बना लिया। उपरोक्त जानकारी पर प्रतिवादी सं 3 ने आईपीसी की धारा 269 और 188 के तहत और 1897 के अधिनियम की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए वर्तमान एफआईआर दर्ज की गई।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री गौतम खेत्रपाल और श्री जीतेन्द्र श्रीवास्तव ने कहा कि सीआरपीसी की धारा 2(डी) के तहत परिभाषित 'परिवाद' की परिभाषा खंड का अवलोकन करने से पता चलेगा कि सीआरपीसी की धारा 2(डी) के तहत परिभाषित शब्द को अर्हता प्राप्त करने के लिए, मजिस्ट्रेट के पास परिवाद होनी चाहिए। परिभाषा आगे निर्धारित करती है कि शिकायत में पुलिस रिपोर्ट शामिल नहीं है। विधि सुस्थापित है कि आईपीसी की धारा 188 के तहत कथित अपराध के लिए सीआरपीसी की धारा 154 के तहत कोई एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती है, इस प्रकार, आईपीसी की धारा 188 और 1897 के अधिनियम की धारा 3 के तहत एफआईआर दर्ज करना अवैध और कानून की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है।

5. श्री खेत्रपाल आगे प्रस्तुत करते हैं कि भा.दं.स सी. की धारा 269 के तहत अपराध यह निर्धारित करता है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा जीवन के लिए खतरनाक बीमारी के संक्रमण को फैलाने के लिए की गई किसी भी लापरवाही को दंडित किया जाएगा। उपरोक्त नुस्खे के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए, वास्तविक परीक्षण यह है कि कोई व्यक्ति अपने लापरवाही भरे कार्य के कारण जीवन के लिए खतरनाक किसी बीमारी का संक्रमण फैला है या फैलाने की संभावना है। दिनांक 04.07.2021 की एफआईआर में इस बात की भनक तक नहीं है कि याचिकाकर्ताओं में से किसी ने भी जीवन के लिए खतरनाक किसी बीमारी का संक्रमण फैलाया है या फैलाने की संभावना है, इसलिए आईपीसी की धारा 269 के तहत एफआईआर दर्ज करना भी अवैध और त्रुटिपूर्ण है। उत्तरदाताओं ने मामले को उसके सही परिप्रेक्ष्य में न समझकर विधिक रूप से त्रुटि की है। उत्तरदाताओं को यह विचार करना चाहिए था कि धारा 195(1)(ए)(आई) का उद्देश्य व्यक्तियों को कष्टप्रद अभियोजन द्वारा अनावश्यक रूप से परेशान होने से बचाना है। इसके अलावा, धारा 195(1)(ए)(आई) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक लोक सेवक जिसने कोई ऐसा आदेश जारी किया है जिसका पालन नहीं किया गया है/अवज्ञा नहीं की गई है, उसे स्वयं परिवाद करना होगा और यदि वह परिवाद करने से इनकार करता है, कोई भी वरिष्ठ लोक सेवक जिसके अधीन उक्त लोक सेवक प्रशासनिक रूप से अधीनस्थ है, अधीनस्थ द्वारा प्रख्यापित आदेश की अवज्ञा के संबंध में परिवाद दर्ज कर सकता है। 'अधीनस्थ' शब्द का अर्थ है प्रशासनिक रूप से अधीनस्थ अर्थात् एक अधिकारी जो अपनी आधिकारिक क्षमता में उससे श्रेष्ठ है या जिसके प्रशासनिक नियंत्रण में वह कार्य करता है। वर्तमान मामले में एफ. आई. आर. एक नायब तहसीलदार द्वारा दिया गया है। कल्पना के किसी भी विस्तार से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि एक कलेक्टर या जिला मजिस्ट्रेट एक नायब तहसीलदार के अधीनस्थ है। उत्तरदाता इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि आईपीसी की धारा 188 के तहत कथित अपराध के लिए सीआरपीसी की धारा 154 के तहत कोई एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकती है। केवल इसलिए कि आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध संज्ञेय है, यह अपने आप में पुलिस अधिकारी को ऐसे अपराध के लिए एफआईआर दर्ज करने के लिए अधिकृत नहीं करता है, इसका कारण यह है कि एफआईआर के



पंजीकरण के परिणामस्वरूप सीआरपीसी की धारा 173(8) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करना आवश्यक होगा जो कि सीआरपीसी की धारा 2(डी) के साथ पठित धारा 195(1)(ए) द्वारा विशेष रूप से वर्जित है। उत्तरदाता इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि सीआरपीसी की धारा 2 (डी) के तहत निहित 'परिवाद' शब्द की परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि परिवाद में पुलिस रिपोर्ट शामिल नहीं है। सीआरपीसी के तहत परिभाषित शिकायत को योग्य बनाने के लिए, इसे संबंधित व्यक्ति द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। 1897 के अधिनियम की धारा 3 जो 'दंड' शब्द से संबंधित है, किसी भी दंड को परिभाषित नहीं करती है, सिवाय इसके कि -यदि कोई व्यक्ति 1897 के अधिनियम के तहत किसी भी विनियमन की अवज्ञा करता है, तो इसे आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध माना जाएगा और इस प्रकार 1897 के अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराध का पंजीकरण स्वयं अवैध और त्रुटिपूर्ण है।

6. श्री खेत्रपाल ने आगे कहा कि उत्तरदाता दिनांक 28.05.2021 की अधिसूचना पर विचार करने में भी विफल रहे हैं। प्रतिवादी सं 2 ने घोषणा की थी कि उपरोक्त अधिसूचना के उल्लंघन पर आईपीसी और 2005 के अधिनियम में निहित प्रावधानों के तहत निपटा जाएगा। अध्याय 10, विशेष रूप से 2005 के अधिनियम की धारा 60 में निर्धारित किया गया है कि कोई भी न्यायालय 2005 के अधिनियम के तहत परिभाषित निर्धारित अधिकारी द्वारा की गई शिकायत के बिना 2005 के अधिनियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा। यह स्वीकार किया गया है कि, 2005 के अधिनियम, 1897 के अधिनियम या सी.आर.पी.सी. के प्रावधानों के तहत कोई परिवाद कभी नहीं की गई थी, इसलिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ अपराध का पंजीकरण अवैध और त्रुटिपूर्ण है।

7. अपने तर्कों के समर्थन में, श्री खेत्रपाल डॉ. संतोष कुमार पटेल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य, {डब्ल्यूपी(सीआर) संख्या 332/2020, 14.12.2020 को निर्णय लिया गया} और डॉ. अपूर्व घिया बनाम मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हैं, छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य, {डब्ल्यूपी (सीआर) संख्या 310/2020, 07.10.2020 को निर्णय लिया गया} जिसमें इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया था कि आईपीसी की धारा 188 के तहत एफआईआर का पंजीकरण स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं के खिलाफ बिना किसी विनिर्देशन या किसी जांच के एक सामान्य आरोप लगाया गया है। एफ. आई. आर. में ही कहा गया है कि जानकारी के अनुसार, लगभग 1000 लोग विवाह में शामिल हुए थे। उक्त जानकारी के बारे में या विवाह में शामिल होने वाले व्यक्तियों के बारे में कोई विशिष्ट विवरण नहीं है। याचिकाकर्ताओं को अवैध रूप से आपराधिक कार्यवाही में घसीटा गया है और उन्हें आपराधिक मुकदमे का सामना करने के लिए विवश किया जा रहा है जो याचिकाकर्ताओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा और याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू करना कानून की उचित प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग है और याचिकाकर्ताओं को बिना किसी गलती के सिर्फ राजनीतिक कारणों से फंसाया गया। श्री खेत्रपाल पवन गिरी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य सीआरएम-एम-51595- 2021 (ओ एंड एम) मामले में 07.02.2022 को पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एकल पीठ के फैसले पर भी भरोसा करते हैं, जिसमें भी अपराध के तहत उसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 188 और 269 दर्ज की गई



थी और विद्वान एकल न्यायाधीश ने एफआईआर को रद्द कर दिया था। अतः यह याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है।

8. दूसरी ओर, राज्य/प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान उप महाधिवक्ता श्री एच.एस.अहलूवालिया का कहना है कि एफआईआर के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि अधिसूचना जारी होने और जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के बावजूद सीओवीआईडी -19 का पालन करना होगा। प्रोटोकॉल के अनुसार, याचिकाकर्ताओं ने जानबूझकर विवाह समारोह का आयोजन किया, जिसमें लगभग 1000 लोग एकत्र हुए थे। इस तरह की सभाओं से लोगों में कोरोना वायरस फैल सकता था, इसलिए स्थिति की गंभीरता तथा कोविड-19 प्रोटोकॉल के उल्लंघन को देखते हुए, जो एक अपराध है, नायब तहसीलदार, अंबिकापुर द्वारा याचिकाकर्ताओं के खिलाफ पुलिस थाना अंबिकापुर, जिला सरगुजा (सी. जी.) के समक्ष शिकायत की गई थी। याचिकाकर्ताओं ने डॉ. संतोष कुमार पटेल (सुप्रा) और डॉ. अपूर्व घिया (सुप्रा) मामले में इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.07.2021 (अनुलग्नक पी/1) के तहत एफआईआर को रद्द करने की मांग की है। याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि, उक्त मामले में माननीय उच्च न्यायालय ने माना है कि सीआरपीसी की धारा 154 के तहत कोई भी एफआईआर आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध के लिए दर्ज नहीं की जा सकती है। इस प्रकार, आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध के लिए एफआईआर दर्ज करना स्वयं अवैध है। याचिकाकर्ताओं द्वारा दी गई उक्त दलील तथ्यहीन और निराधार है और उपरोक्त निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं है, क्योंकि, उपरोक्त एफआईआर (अनुबंध पी/1) आईपीसी की धारा 188 और 269 और 1987 के अधिनियम की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दर्ज की गई थी। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि भा.दं.सं. सी. की धारा 188 के तहत अपराध घटना की तारीख तक अन्य धाराओं के साथ दर्ज किया गया है, अर्थात् 02.07.2021 क्योंकि कोविड-19 प्रोटोकॉल के अनुपालन के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांकित 28.05.2021 जारी अधिसूचना का प्रभाव था, जिसे याचिकाकर्ताओं द्वारा शादी का संचालन करते समय नजरअंदाज कर दिया गया है, जिसमें लगभग 1000 लोग एकत्र हुए थे। सीआरपीसी की धारा 154 में प्रावधान है कि संज्ञेय अपराध घटित होने की सूचना संबंधित थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा लिखित रूप में दी जाएगी, अतः पुलिस थाना अंबिकापुर के संबंधित थाना प्रभारी द्वारा सूचना प्राप्त होने पर एफ.आई.आर. एक ऐसी घटना के बारे में दर्ज किया गया जो एक संज्ञेय अपराध है। यह शायद ही उक्त पुलिस अधिकारी को कोई विवेकाधिकार देता है। ऐसे अधिकारी पर दोहरा दायित्व यह है कि: (क) उसे ऐसी जानकारी प्राप्त होनी चाहिए, तथा (ख) (बी) जैसा निर्धारित है वैसा ही अभिलिखित करें। सीआरपीसी की धारा 154 की भाषा अधिकारी पर ऐसी अनिवार्य बाध्यता लगाती है। इस संबंध में हमारे देश में इस प्रावधान की उत्पत्ति यह है कि प्रभारी अधिकारी को प्राथमिकी दर्ज करनी चाहिए तथा तुरंत अन्वेषण के साथ आगे बढ़ना चाहिए। श्री अहलूवालिया ने आगे कहा कि एफआईआर में आरोपों के प्रथम दृष्टया विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि जिन अपराधों के लिए अपराध दर्ज किया गया है, वे याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए हैं और इस स्तर पर, याचिकाकर्ताओं के बचाव की उनके अपराध या बेगुनाही का आकलन करने के लिए जांच नहीं की जा सकती क्योंकि यह विचारण न्यायालय के समक्ष साक्ष्य का मामला है। आरोपों की जांच की जरूरत है और जांच प्रक्रियाधीन है और उचित जांच के बाद पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट सौंपी जाएगी, इसलिए इस स्तर पर



एफआईआर को रद्द नहीं किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता कोई असाधारण परिस्थिति नहीं दिखा पाए हैं कि बचाव या दस्तावेजों पर गौर किया जा सके क्योंकि जांच चल रही है, इसलिए, इस स्तर पर याचिकाकर्ताओं/अभियुक्तों के अपराध या निर्दोष का आकलन करने के उद्देश्य से, केवल सामग्री प्रथम सूचना प्रतिवेदन की जांच होनी चाहिए। अब तक की गई अन्वेषण को देखते हुए, वर्तमान में प्रथम सूचना प्रतिवेदन को रद्द करने हेतु मामला प्रतीत नहीं होता है। यह सुस्थापित विधि है कि एफआईआर को केवल उसी मामले में रद्द किया जा सकता है, जहां पूरी एफआईआर और उसकी सामग्री को पढ़ने के बाद भी, याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनाया जा सकता है, जो कि वर्तमान रिट याचिका में मामला नहीं है, इसलिए यह यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान में एफआईआर को रद्द करने का उपयुक्त मामला है। हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजनलाल और अन्य 1 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि संज्ञेय अपराधों से संबंधित कार्यवाही में शीर्ष न्यायालय द्वारा उक्त फैसले में गिनाए गए कुछ आधारों को छोड़कर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित आधारों में से कोई भी वर्तमान मामले में आकर्षित नहीं है। इसके अलावा, तेलंगाना राज्य बनाम हबीब अब्दुल्ला जिलानी और अन्य 2 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि, यदि दी गई जानकारी में स्पष्ट रूप से संज्ञेय अपराध का उल्लेख है, तो तुरंत एफआईआर दर्ज करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। एफआईआर दर्ज करने के चरण में अन्य विचार सुसंगत नहीं हैं। इसके अलावा यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या दी गई जानकारी संज्ञेय अपराध के घटित होने का पूर्व दृष्टया खुलासा करती है। याचिकाकर्ता अपने असाधारण रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में इस माननीय न्यायालय के हस्तक्षेप हेतु कोई आधार बनाने में विफल रहे हैं तथा याचिका, किसी भी योग्यता से रहित होने के कारण, खारिज होने योग्य है। चूंकि अन्वेषण कि जा रही है जहाँ अभियोजन पक्ष सबूत तथा रिकॉर्ड एकत्र कर रहा है, इसलिए, इस स्तर पर, तत्काल याचिका अपरिपक्व है तथा खारिज की जा सकती है।

9. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है, उनसे संलग्न अभिवचनों तथा दस्तावेजों हेतु अध्ययन किया है।

10. वर्तमान मामले में, मूल रूप से याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आईपीसी की धारा 269, 188 और 1897 के अधिनियम की धारा 3 के तहत सीओवीआईडी -19 महामारी प्रोटोकॉल का उल्लंघन करने के लिए एफआईआर दर्ज की गई है क्योंकि यह आरोप लगाया गया है कि बेटे और बेटी के विवाह में याचिकाकर्ता सं. 1 और 2 का विवाह याचिकाकर्ता सं.1 के स्वामित्व वाले विवाह हॉल में आयोजित किया गया था, जहां 1000 से अधिक लोग एकत्र हुए थे। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि अम्बिकापुर के नायब तहसीलदार कोमल प्रसाद साहू की ओर से चौकी मणिपुर पुलिस की एक महिला सिपाही किरण अमलावती द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

11. आगे बढ़ने से पहले, भा.दं.सं. सी. की धारा 188, 268 तथा 1896 के अधिनियम की धारा 3 के सुसंगत वैधानिक प्रावधानों को निकालना उचित होगा, जो निम्नानुसार है:



"188. लोक सेवक द्वारा सम्यक रूप से प्रख्यापित आदेश की अवज्ञा---जो कोई यह जानते हुये कि ऐसे लोक-सेवक द्वारा प्रख्यापित किसी आदेश से जो ऐसे किसी आदेश को प्रख्यापित करने के लिए विधि पूर्वक सशक्त है वह कोई कार्य करने के लिए विरत रहने के लिए या अपने प्रबंधधिन किसी संपत्ति के बार में कोई विशेष व्यवस्था करने के लिए निर्दिष्ट किया गया है, ऐसे निदेश की अवज्ञा करेगा. यदि ऐसी अवज्ञा किसी वैध रूप से नियोजित व्यक्ति को बाधा, क्षोभ या क्षति, या बाधा, क्षोभ या क्षति हेतु खतरा पैदा करती है या पैदा करती है, तो उसे साधारण कारावास से दंडित किया जाएगा जो एक माह तक का हो सकता है या जुर्माना जो दो सौ रुपये तक का हो सकता है, या दोनों से दंडित किया जाएगा। तथा यदि ऐसी अवज्ञा मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा हेतु खतरा पैदा करती है या प्रवृत्त करती है, या दंगा या कलह का कारण बनती है या पैदा करती है, तो दोनों में से किसी एक के कारावास से जो छह महीने तक का हो सकता है, या जुर्माने से जो एक हजार रुपये तक का हो सकता है, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

स्पष्टीकरण---यह आवश्यक नहीं है की आपराधिक आशय ापहानि उत्पन्न करने का या उसके ध्यान में यह हो कि उसकी अवज्ञा करने से ापहानि होना सम्भाव्य है . यह पर्याप्त है कि जिस आदेश की अवज्ञा करता है उस आदेश का उसे ज्ञान है और यह भी ज्ञान है की उसके अवज्ञा करने से ापहानि उत्पन्न होती है या होना सम्भाव्य है। यह पर्याप्त है कि वह उस आदेश के बारे में जानता है जिसकी वह अवज्ञा करता है, तथा यह कि उसकी अवज्ञा से नुकसान होता है, या होने की संभावना है।"

"269. उपेक्षापूर्ण कार्य जिससे जीवन के लिए संकटपूर्ण रोग का संक्रम फैलना संभाव्य हो---जो कोई विधिविरुद्ध रूप से या उपेक्षा से ऐसा कोई कार्य करेगा, जिससे कि और जिससे वह जानता या विश्वास करने का कारण रखता हो कि, जीवन के लिए संकटपूर्ण किसी रोग का संक्रम फैलना संभाव्य है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।"

"3. दंड--- (1) इस अधिनियम के तहत बनाए गए किसी भी विनियमन या आदेश की अवज्ञा करने वाले किसी भी व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 188 के तहत दंडनीय अपराध माना जाएगा।

(2) जो कोई, - (i) स्वास्थ्य देखभाल सेवा कर्मियों के खिलाफ हिंसा का कार्य करता है या करने के लिए उकसाता है; या (ii) किसी संपत्ति को उकसाने या नुकसान पहुंचाने पर कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि तीन माह तक की होगी, लेकिन जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना लगाया जाएगा, जो पचास हजार रुपये तक की होगी जिसे दो लाख रुपये तक बढ़ सकता है।

(3) जो कोई भी स्वास्थ्य सेवा कर्मियों के खिलाफ हिंसा हेतु हेतुर्य करते समय भारतीय दंड संहिता (1860 हेतु 45) की धारा 320 में परिभाषित गंभीर चोट पहुंचाता है, उसे छह महीने से कम नहीं, लेकिन सात साल तक के हेतुरावास तथा जुर्माने से दंडित किया जाएगा, जो एक लाख रुपये से कम नहीं होगा, लेकिन जो पांच लाख रुपये तक हो सकता है।"



12. वर्तमान मामले में विचार हेतु जो प्रश्न उत्पन्न होगा वह यह है कि क्या भा.दं.सं. सी. की धारा 188 के तहत अपराध हेतु भा.दं.सं. सी. की धारा 154 के तहत एफ. आई. आर. दर्ज की जा सकती है तथा क्या भा.दं.सं. सी. की धारा 195 (1) (ए) (आई) में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए पुलिस द्वारा इस तरह के अपराध की जांच की जा सकती है।

13. विवाद का निर्णय लेने के लिए, द.प्र.स धारा 2 (सी) में निहित "संज्ञेय अपराध" की परिभाषा पर ध्यान देना उचित होगा।

“ (ग) “संज्ञेय अपराध से ऐसा अपराध अभिप्रेत है जिसके लिए और “संज्ञेय मामला से ऐसा मामला अभिप्रेत है जिसमें, पुलिस अधिकारी प्रथम अनुसूची के या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अनुसार वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकता है;

द.प्र.स धारा 2 (घ) "परिवाद" को परिभाषित करती है।

इसमें कहा गया है: (घ) “परिवाद” से इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कार्रवाई किए जाने की दृष्टि से मौखिक या लिखित रूप में उससे किया गया यह अभिकथन अभिप्रेत है कि किसी व्यक्ति ने, चाहे वह ज्ञात हो या अज्ञात, अपराध किया है, किंतु इसके अंतर्गत पुलिस रिपोर्ट नहीं है।

स्पष्टीकरण :----- ऐसे किसी मामले में, जो अन्वेषण के पश्चात् किसी असंज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट करता है. पुलिस अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट परिवाद समझी जाएगी और वह पुलिस अधिकारी जिसके द्वारा ऐसी रिपोर्ट की गई है, परिवादी समझा जाएगा;

द.प्र.स धारा 2 (ज) “अन्वेषण को परिभाषित करती है जो इस प्रकार है: (ज) “अन्वेषण के अंतर्गत वे सब कार्यवाहियां हैं जो इस संहिता के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा या (मजिस्ट्रेट से भिन्न) किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किया गया है. साक्ष्य एकत्र करने के लिए की जाएं:

“पुलिस रिपोर्ट” को संहिता की धारा 2 (द) में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है: (द) “पुलिस रिपोर्ट” से पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 173 की उपधारा (2) के अधीन मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट अभिप्रेत है:

14. द.प्र.स अध्याय XII में पुलिस को दी गई जानकारी तथा अन्वेषण करने की उनकी शक्तियों के बारे में बताया गया है। द.प्र.स धारा 154 संज्ञेय मामलों में जानकारी के बारे में बात करती है। धारा 154 की उप-धारा (1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा: धारा 155 गैर-संज्ञेय मामलों की जानकारी तथा ऐसे मामलों की अन्वेषण से संबंधित है। धारा 156 संज्ञेय मामले की जांच करने के लिए पुलिस अधिकारी की शक्ति का उल्लेख करती है। धारा 173 अन्वेषण पूरी होने पर पुलिस अधिकारी की



रिपोर्ट देने का प्रावधान करती है। धारा 190 मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों के संज्ञान हेतु प्रावधान करती है। धारा 195 न्यायालय को उसमें उल्लिखित अपराधों का संज्ञान लेने से रोकती है, सिवाय उसमें नामित व्यक्तियों द्वारा लिखित शिकायत के। 15. इस स्तर पर, द.प्र.स धारा 195 (1) (क) (i) पर ध्यान देना उचित होगा। --- "195. लोक न्याय के विरुद्ध अपराधों के लिए और साक्ष्य में दिए गए दस्तावेजों से संबंधित अपराधों के लिए लोक-सेवकों के विधिपूर्ण प्राधिकार के अवमान के लिए अभियोजन ---"

(1) कोई न्यायालय—(क) (i) भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 172 से धारा 188 तक की धाराओं के (जिनके अन्तर्गत ये दोनों धाराएँ भी हैं) अधीन दण्डनीय किसी अपराध का, अथवा

(ii) XXX XXX

(iii) XXX XXX

संज्ञान संबद्ध लोक-सेवक के, या किसी अन्य ऐसे लोक-सेवक के, जिसके वह प्रशासनिक तौर पर अधीनस्थ है, लिखित परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं;

16. उपर्युक्त प्रावधान का उद्देश्य लोगों को प्रतिशोध में परेशान करने वाले अभियोजनों द्वारा अनावश्यक रूप से परेशान किए जाने से बचाना है। यह निर्दोष व्यक्तियों को आपराधिक अभियोजन से बचाने के लिए एक जाँच है जो द्वेष या दुर्भावना से सक्रिय हो सकता है।

17. सी. आर. पी. सी. की धारा 195 (1) के सावधानीपूर्वक अवलोकन से पता चलेगा कि सामान्य नियम यह है कि कोई भी व्यक्ति जिसे जानकारी है, वह शिकायत करके विधि को लागू कर सकता है, भले ही वह सामान्य नियम के अनुसार अपराध में रुचि रखने वाला या सहायता करने वाला व्यक्ति न हो। सीआरपीसी की धारा 195 एक अपवाद प्रदान करता है और अदालत या किसी अन्य अदालत, जिसके अधीनस्थ ऐसी न्यायालय है, द्वारा लिखित शिकायत के अलावा उसमें उल्लिखित अपराध का संज्ञान लेने से मना करता है। (लालजी हरिदास बनाम महाराष्ट्र राज्य तथा अन्य 3 देखें।)

18. धीरेंद्र नाथ बेरा 4 की शिकायत पर बसीर-उल-हक और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने आईपीसी की धारा 182 और 188 को इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:--

"(9) धारा 195, सीआरपीसी, जिस पर उठाया गया प्रश्न आधारित है, अन्य बातों के साथ-साथ प्रावधान करता है, कोई भी न्यायालय दंड संहिता की धारा 172 से 188 के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, संबंधित लोक सेवक, या किसी अन्य लोक सेवक, जिसके वह अधीनस्थ है, की लिखित शिकायत को छोड़कर। इस प्रकार कानून की अपेक्षा है कि संबंधित लोक सेवक की लिखित शिकायत के बिना धारा 182 के तहत किसी अपराध हेतु किसी भी अभियोजन का संज्ञान नहीं लिया जा सकता है।....."

19. दौलत राम बनाम पंजाब राज्य 5 के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि सीआरपीसी की धारा 195 द्वारा प्रदान किए गए तरीके को छोड़कर आईपीसी की धारा 182 के तहत मामले की सुनवाई करने में अदालत के



डीबी

खिलाफ पूर्ण प्रतिबंध है। आगे यह माना गया कि शिकायत संबंधित लोक सेवक द्वारा लिखित रूप में होनी चाहिए और लिखित परिवाद के बिना आईपीसी की धारा 182 के तहत मुकदमा शुरू से ही अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

20. इसी तरह, गोविंद मेहता बनाम बिहार राज्य 6 के मामले में, सुप्रीम कोर्ट के आधिपत्य ने माना है कि सीआरपीसी की धारा 195 वास्तव में धारा 190 के तहत संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट की निरंकुश शक्तियों पर एक सीमा है। उसे अपने समक्ष परिवाद के तथ्यों की जांच करनी चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि क्या धारा 190 के तहत संज्ञान लेने की उसकी शक्ति धारा 195(1) के किसी भी खंड (ए) से (सी) द्वारा छीन ली गई है या नहीं। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि धारा 195 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट के पास उसमें उल्लिखित किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

21. इसी तरह, सी मुनियप्पन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य 7 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया कि सीआरपीसी की धारा 195 के प्रावधान अनिवार्य हैं और इसका अनुपालन न करने से अभियोजन पक्ष प्रभावित होगा। यह निम्नानुसार देखा गया:

"33. इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, विधि को इस प्रभाव से संक्षेपित किया जा सकता है कि उस लोक सेवक द्वारा परिवाद होनी चाहिए जिसके वैध आदेश का पालन नहीं किया गया है। परिवाद लिखित में होनी चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के प्रावधान अनिवार्य हैं। इसका पालन न करने से अभियोजन पक्ष तथा अन्य सभी परिणामी आदेश दूषित हो जाएंगे। न्यायालय ऐसे परिवाद के बिना मामले का संज्ञान नहीं ले सकती है। इस तरह की परिवाद के अभाव में, वाद तथा दोषसिद्धि शुरू से ही शून्य होगी क्योंकि यह अधिकार क्षेत्र से बाहर है।"

22. सी. मुनियप्पन (सुप्रा) में निर्धारित कानून के सिद्धांत का बबिता लीला और अन्य बनाम भारत संघ 8 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा अनुमोदन के साथ पालन किया गया है, जिसमें इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:-

"46. संहिता की धारा 195 के प्रावधान इतने अनिवार्य हैं कि उनका अनुपालन न करने पर अभियोजन और सभी परिणामी आदेश निष्प्रभावी हो जाएंगे, इस न्यायालय ने सी मुनियप्पन बनाम टीएन राज्य (सुप्रा) मामले में अन्य मामलों के साथ-साथ यह फैसला सुनाया है, जिसमें निम्नलिखित सचिदा नंद सिंह बनाम बिहार राज्य 9 में टिप्पणियाँ अनुमोदन के साथ दर्ज की गईं: (एस. सी. सी. पीपी. 497-98, पैरा 7)

"7. ... संहिता की धारा 190 "प्रथम श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट" को शिकायत, या पुलिस रिपोर्ट या जानकारी प्राप्त करने पर या अपनी जानकारी पर "किसी भी अपराध" का संज्ञान लेने का अधिकार देती है। धारा 195 मजिस्ट्रेट की ऐसी सामान्य शक्तियों को प्रतिबंधित करती है, और किसी व्यक्ति के परिवाद के साथ न्यायालय में जाने के सामान्य अधिकार को उस सीमा तक खत्म कर दिया जाता है। यह व्याख्या का एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि न्यायालय के सामान्य अधिकार क्षेत्र पर अंकुश लगाने वाले प्रावधान को आम तौर पर सख्त व्याख्या प्राप्त करनी चाहिए जब तक कि कानून या संदर्भ में अन्यथा आवश्यकता न हो।.....



डीबी

23. यू. पी. राज्य के मामले में बनाममाता भिक्षु तथा अन्य 10, उनके द.प्र.स धारा 195 (1) (ए) (आई) के संबंध में उच्चतम न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशो निम्नानुसार अभिनिर्धारित हैं:

"6. इस धारा का उद्देश्य व्यक्तियों को इसमें निर्दिष्ट अपराधों के लिए निजी व्यक्तियों के कहने पर दुर्भावना या द्वेष या स्वभाव की तुच्छता से प्रेरित व्यक्ति द्वारा अपर्याप्त सामग्री या अपर्याप्त आधार पर उत्पीड़नात्मक रूप से वाद चलाने से बचाना है। निस्संदेह, इस धारा के प्रावधान अनिवार्य हैं और न्यायालय के पास इसमें उल्लिखित किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। जब तक धारा के अनुसार 'संबंधित लोक सेवक' की ओर से लिखित में कोई परिवाद न हो, जिसके बिना भारतीय दंड संहिता की धारा 188 के तहत वाद शुरू से ही शून्य हो जाता है। **दौलत राम बनाम पंजाब राज्य (सुप्रा) देखें।** दूसरे शब्दों में कहें कि संबंधित लोक सेवक द्वारा लिखित शिकायत उन लोगों के खिलाफ भा.दं.सं. सी. की धारा 188 के तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए अनिवार्य है, जो इस जानकारी के साथ कि एक लोक सेवक द्वारा या तो किसी निश्चित कार्य से दूर रहने का आदेश दिया गया है, या कुछ आदेश लेने के लिए, अपने कब्जे में या अपने प्रबंधन के तहत कुछ संपत्ति के साथ उस आदेश की अवज्ञा करते हैं। फिर भी, जब न्यायालय अपने विवेकाधिकार से गलत काम करने वालों पर मुकदमा चलाने के लिए अनिच्छुक होती है, तो किसी भी निजी शिकायतकर्ता को अपनी व्यक्तिगत क्षमता में कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि धारा के पढ़ने से ही यह स्पष्ट हो जाएगा कि कोई भी न्यायालय भा.दं.सं. सी. की धारा 172 से 188 के तहत दंडनीय किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं ले सकती है, सिवाय 'संबंधित लोक सेवक' या किसी अन्य लोक सेवक की लिखित शिकायत के, जिसके वह (वह लोक सेवक जिसने वह आदेश जारी किया है) प्रशासनिक रूप से अधीनस्थ है।"

24. इसी प्रकार, सचिदा नंद सिंह 8 (सुप्रा) में, इस मुद्दे से निपटने के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के उनके आधिपत्य को निम्नानुसार रखा गया है:

"7. भले ही खंड दो व्याख्याओं में सक्षम हो, हम स्पष्ट कारणों से संकीर्ण व्याख्या चुनने हेतु इच्छुक हैं। संहिता की धारा 190 "प्रथम श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट" को शिकायत, या पुलिस रिपोर्ट या जानकारी प्राप्त करने पर या अपनी जानकारी पर "किसी भी अपराध" का संज्ञान लेने का अधिकार देती है। धारा 195 मजिस्ट्रेट की ऐसी सामान्य शक्तियों को प्रतिबंधित करती है, तथा किसी व्यक्ति के शिकायत के साथ न्यायालय में जाने के सामान्य अधिकार को उस हद तक कम कर दिया जाता है। यह व्याख्या का एक सुप्रसिद्ध सिद्धांत है कि न्यायालय के सामान्य क्षेत्राधिकार पर अंकुश लगाने वाले प्रावधान को आम तौर पर सख्त व्याख्या प्राप्त होनी चाहिए जब तक कि कानून या संदर्भ में अन्यथा आवश्यकता न हो (**अब्दुल वहीद खान बनाम भवानी 11**)"

25. एमएस अहलावत बनाम हरियाणा राज्य और अन्य 12 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सीआरपीसी की धारा 195 के प्रावधान अनिवार्य हैं और किसी भी अदालत को उसमें उल्लिखित किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार क्षेत्र नहीं है, जब तक कि उस धारा के तहत आवश्यक लिखित परिवाद न हो।



डीबी

26. जीवन कुमार राउत और अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो 13 के मामले में, जो मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम, 1994 (टीओएचओ अधिनियम) के तहत मामला है, जिसकी धारा 22 में कहा गया है कि कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के तहत किसी अपराध का संज्ञान संबंधित उपयुक्त प्राधिकारी, या केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत किसी अधिकारी द्वारा की गई परिवाद के अलावा नहीं लेगी या जैसा भी मामला हो, उपयुक्त प्राधिकारी; सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या अधिकृत अधिकारी के पास सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार जांच करने की शक्ति है, संदेह व्यक्त करते हुए, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

“25. टी. ओ. एच. ओ. की धारा 22 किसी उपयुक्त प्राधिकारी या उस व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत को छोड़कर, जिसने उसमें पहले शिकायत की थी, संज्ञान लेने से मना करती है। हालाँकि, प्रत्यर्थी के पास एक जाँच एजेंसी की सभी शक्तियाँ हैं, लेकिन उसे पुलिस रिपोर्ट दर्ज करने से स्पष्ट रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया है। यह केवल एक उपयुक्त प्राधिकारी के रूप में शिकायत याचिका दायर कर सकता है ताकि टी. ओ. एच. ओ. की धारा 22 में निहित आवश्यकताओं का पालन किया जा सके। यदि टी. ओ. एच. ओ. के प्रावधानों के कारण, आवश्यक निहितार्थ द्वारा पुलिस रिपोर्ट दाखिल करना अनिवार्य रूप से निषिद्ध है, तो संहिता की धारा 173 की उप-धारा (2) के संदर्भ में इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का प्रश्न नहीं उठा तथा न ही उठ सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई पुलिस रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकी, तो संहिता की धारा 167 की उप-धारा (2) को आकर्षित नहीं किया गया।

xxxxxxxxxxxxxx

28. इसे अलग ढंग से कहें तो, जांच पूरी होने पर, एक अधिकृत अधिकारी केवल शिकायत दर्ज कर सकता है, पुलिस रिपोर्ट नहीं, क्योंकि संसद द्वारा एक विशिष्ट रोक बनाई गई है। मामले के उस दृष्टिकोण में, पुलिस रिपोर्ट एक शिकायत नहीं होने के कारण तथा इसके विपरीत, प्रतिवादी की ओर से अपराध का संज्ञान लेने हेतु संबंधित मजिस्ट्रेट की अधिकारिता का आह्वान करते हुए उक्त विधि का चयन करना अनिवार्य था, न कि किसी अन्य तरीके से। इस प्रकार, टीओएचओ में निर्धारित प्रक्रिया अनुमति देगी प्रतिवादी को टीओएचओ की धारा 22 में निहित विशेष प्रावधानों के अलावा शिकायत दर्ज करनी होगी न कि रिपोर्ट दर्ज करनी होगी कि किस प्रकार की कार्रवाई का सहारा लिया जा सकता था।

xxxxxxxxxxxxxx

36. हालाँकि, हम इस न्यायालय के कुछ फैसलों से अनजान नहीं हैं, जहाँ सीमा शुल्क अधिनियम के तहत अधिकारियों जैसे कुछ विशेष वैधानिक प्राधिकरणों को एनडीपीएस अधिनियम जैसे विशेष कानून के तहत अन्वेषण अधिकारी की सभी शक्तियाँ दी गई हैं, लेकिन इस न्यायालय ने माना है कि वे आरोप पत्र दायर नहीं कर सकते हैं तथा उस हद तक वे पुलिस अधिकारी नहीं होंगे।

(देखें –रमेश चंद्र मेहता बनाम डब्ल्यू. बी. 14 राज्य तथा राज कुमार करवाल बनाम भारत संघ 15।)



डीबी

37. हालाँकि, वर्तमान मामले में, प्रतिवादी को विशेष रूप से 1946 के अधिनियम के तहत तथा संहिता के तहत भी अन्वेषण करने तथा आरोप पत्र दायर करने का अधिकार दिया गया है, जो केवल टी. ओ. एच. ओ. की धारा 22 के कारण ऐसा करने से वंचित है। इस बारे में संदेह है कि क्या किसी तीसरे पक्ष द्वारा की गई शिकायत पर अन्वेषण करने के लिए विभाग के किसी अधिकारी को अधिकृत करने की स्थिति में, वह आरोपी को गिरफ्तार करने तथा अन्वेषण जारी रखने का हकदार होगा जैसे कि वह एक पुलिस अधिकारी है। हम आशा करते हैं कि संसद निकट भविष्य में विधि में उपयुक्त संशोधन के लिए उचित उपाय करेगी।"

27. सलोनी अरोड़ा बनाम एनसीटी दिल्ली राज्य 16 के मामले में, जिसमें सीआरपीसी की धारा 195(1)(ए) में निहित प्रावधानों के उल्लंघन में, आरोपी पर आईपीसी की धारा 182 के तहत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया था।, सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने दौलत राम (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद शिकायत को रद्द कर दिया और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया ---

"12) यह विवाद में नहीं है कि इस मामले में, अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी के खिलाफ कार्रवाई शुरू करते समय संहिता की धारा 195 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का सहारा नहीं लिया। यही कारण है कि, हमारी सुविचारित राय में, जहां तक आईपीसी की धारा 182 के तहत अपराध का संबंध है, अभियोजन पक्ष द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ की गई कार्रवाई को दौलत राम (सुप्रा) ऊपर उद्धृत के मामले में निर्धारित कानून के खिलाफ होने के कारण शून्य घोषित किया गया है।"

28. मद्रास उच्च न्यायालय ने जीवनंदम तथा अन्य बनाम राज्य तथा अन्य 17 के मामले में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि एक पुलिस अधिकारी भा.दं.सं. सी. की धारा 172 से 188 के तहत आने वाले किसी भी अपराध हेतु एफ. आई. आर. दर्ज नहीं कर सकता है तथा निम्नानुसार टिप्पणी की:---

"25. चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, भा.दं.सं. की धारा 188 के तहत अपराध के रूप में निम्नलिखित दिशा-निर्देश जारी किए गए हैं:

क) एक पुलिस अधिकारी भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 172 से 188 के तहत आने वाले किसी भी अपराध हेतु एफ. आई. आर. दर्ज नहीं कर सकता है.

ख) एक पुलिस अधिकारी को भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 41 के तहत प्रदत्त शक्तियों के आधार पर भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 41 के तहत कार्रवाई करने का अधिकार होगा, जब उसकी उपस्थिति में भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 188 के तहत कोई संज्ञेय अपराध किया जाता है या जहां ऐसी कार्रवाई की आवश्यकता होती है, ताकि ऐसे व्यक्ति को भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 188 के तहत अपराध करने से रोका जा सके।

ग) पुलिस अधिकारी की भूमिका सीआरपीसी की धारा 41 के तहत निर्धारित निवारक कार्रवाई तक ही सीमित रहेगी और उसके तुरंत बाद, उसे संबंधित/अधिकृत लोक सेवक को इसके बारे में सूचित करना होगा, ऐसे लोक सेवक को अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष लिखित रूप में शिकायत देने में सक्षम बनाना, जो आईपीसी की धारा 188 की आवश्यकताओं से प्रथम दृष्टया संतुष्ट होने पर ऐसे परिवाद का संज्ञान लेगा।



डीबी

घ) भा.दं.सं. की धारा 188 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए, संबंधित लोक सेवक की लिखित परिवाद में निम्नलिखित तत्व शामिल होने चाहिए;

(i) लोक सेवक द्वारा जारी किया गया आदेश होना चाहिए;

(ii) ऐसा लोक सेवक कानूनी रूप से इसे जारी करने के लिए सशक्त है;

(iii) जिस व्यक्ति को ऐसे आदेश की जानकारी है तथा जिसे ऐसे आदेश द्वारा कुछ कार्य करने से बचने या अपने कब्जे में तथा अपने प्रबंधन के तहत कुछ संपत्ति के साथ कुछ आदेश लेने का निर्देश दिया गया है, उसने अवज्ञा की है; तथा

(iv) ऐसी अवज्ञा कारण बनती है या कारण बनाती है;

(ए) विधिक रूप से नियोजित किसी भी व्यक्ति के लिए बाधा, झुंझलाहट या जोखिम; या

(ख) मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए खतरा; या

(ग) दंगा या झगड़ा।

(घ) पुलिस अधिनियम, 1861 की धारा 30(2) के तहत जारी उद्धोषणा, तर्कसंगतता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए और यह केवल एक नियामक शक्ति की प्रकृति में हो सकता है पुलिस द्वारा नागरिकों की किसी भी लोकतांत्रिक असहमति को कमतर करने की व्यापक शक्ति नहीं है। च) जिस उद्धोषणा के माध्यम से आदेश की घोषणा की जाती है, वह खुले तौर पर की गई किसी चीज द्वारा होनी चाहिए तथा सार्वजनिक तथा निजी जानकारी में उद्धोषणा नहीं होगी। आदेश को ड्रम बजाकर या राजपत्र में अधिसूचित या प्रकाशित किया जाना चाहिए या व्यापक प्रसार वाले समाचार पत्र में प्रकाशित किया जाना चाहिए। छ) किसी भी न्यायिक मजिस्ट्रेट को अंतिम रिपोर्ट का संज्ञान नहीं लेना चाहिए जब यह भा.दं.सं. सी. की धारा 172 से 188 के तहत अपराध को दर्शाता है। भा.दं.सं. सी. की धारा 172 से 188 के अलावा अन्य अपराधों के रूप में एक एफ. आई. आर. या अंतिम रिपोर्ट शुरू से ही अमान्य नहीं होगी तथा एक अंतिम रिपोर्ट को मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान में लिया जा सकता है क्योंकि वे अपराध जो द.प्र.स धारा 195 (1) (ए) (i) के तहत नहीं आते हैं।

ज) पुलिस महानिदेशक, चेन्नई तथा विभिन्न क्षेत्रों के महानिरीक्षक को निर्देश दिया जाता है कि वे भा.दं.सं. की धारा 188 के तहत अपराध से निपटने वाले लोक सेवकों को विशेष रूप से सशक्त बनाकर तुरंत एक प्रक्रिया तैयार करें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि संबंधित लोक सेवकों द्वारा दं. प्र. सं. की धारा 195 (1) (ए) (आई) के तहत लिखित परिवाद दर्ज करने में कोई विलम्ब न हो।

29. हाल के एक निर्णय में, भारत संघ बनाम अशोक कुमार शर्मा तथा अन्य 18 के मामले में, ड्रूस एंड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1940 की धारा 32 में निहित प्रावधानों के आलोक में पुलिस द्वारा एफ. आई. आर. दर्ज करने पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों को निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:



डीबी

“150. इस प्रकार, हम अपने निष्कर्ष/निर्देश निम्नानुसार निकाल सकते हैं:

I. अधिनियम के अध्याय IV के तहत संज्ञेय अपराधों के संबंध में, अधिनियम की धारा 32 तथा दंड प्रक्रिया संहिता की योजना को देखते हुए, पुलिस अधिकारी ऐसे अपराधों के संबंध में अपराधियों पर मुकदमा नहीं चला सकता है। केवल धारा 32 में उल्लिखित व्यक्ति ही ऐसा करने के हकदार हैं।

II. हालाँकि, पुलिस अधिकारी के लिए उस व्यक्ति की जाँच करने और उस पर मुकदमा चलाने पर कोई रोक नहीं है जहाँ उसने अपराध किया है, 18 2020 की आपराधिक अपील No.200,28-8-2020 23 पर निर्णय लिया गया जैसा कि अधिनियम की धारा 32(3) के तहत कहा गया है, अर्थात्, यदि उसने किसी अन्य कानून के तहत कोई संज्ञेय अपराध किया है।

III. सीआरपीसी की योजना और अधिनियम की धारा 32 के आदेश और अधिनियम के तहत ड्रग्स इंस्पेक्टर के पास उपलब्ध शक्तियों के परिप्रेक्ष्य और उसके कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए, एक पुलिस अधिकारी धारा 154 के तहत एफआईआर दर्ज नहीं कर सकता है। सीआरपीसी, अधिनियम के अध्याय IV के तहत संज्ञेय अपराधों के संबंध में और वह सीआरपीसी के प्रावधानों के तहत ऐसे अपराधों की जांच नहीं कर सकता है।

IV. अधिनियम की धारा 22 (1) (डी) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, हम मानते हैं कि मादक पदार्थ निरीक्षक द्वारा अधिनियम के अध्याय IV के तहत आने वाले संज्ञेय अपराधों के संबंध में बिना किसी वारंट के गिरफ्तारी की जा सकती है तथा अन्यथा इसे संज्ञेय अपराध के रूप में माना जा सकता है। हालाँकि, वह **डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 19** में निर्धारित कानून और सीआरपीसी के प्रावधानों का पालन करने के लिए बाध्य है।

V. ऐसा प्रतीत होता है कि इस समझ पर कि पुलिस अधिहेतुरी एक प्राथमिकी दर्ज कर सकता है, ऐसे कई मामले हैं जहाँ अधिनियम के अध्याय IV के तहत आने वाले संज्ञेय अपराधों के संबंध में प्राथमिकी दर्ज की गई हैं। हम विद्वान न्यायमित्र द्वारा लिए गए रुख में सार पाते हैं तथा निर्देश देते हैं कि उन्हें औषधि निरीक्षकों को सौंप दिया जाना चाहिए, यदि पहले से ही नहीं बनाया गया है, तथा यह औषधि निरीक्षक पर है कि वह विधि के अनुसार कार्यवाही करे। हमें यह दर्ज करना चाहिए कि हम इस संबंध में भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्ति का सहारा ले रहे हैं।

VI. इसके अलावा, हम यह विश्वास करने के लिए इच्छुक होंगे कि गिरफ्तारी की शक्ति से संबंधित विधि की समझ पर कई मामलों में, जैसा कि वास्तव में, वर्तमान मामले के तथ्यों से प्रमाणित होता है, पुलिस अधिकारियों ने अधिनियम के अध्याय IV के तहत अपराधों के संबंध में गिरफ्तारी की होगी। इसलिए, गिरफ्तारी की शक्ति के संबंध में, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारा निर्णय कि पुलिस अधिकारियों को अधिनियम के अध्याय IV के तहत संज्ञेय अपराधों के संबंध में गिरफ्तार करने की शक्ति नहीं है, इस निर्णय के दिनांक से प्रभावी होगा।



डीबी

VII. हम आगे निर्देश देते हैं कि गिरफ्तारी करने वाले मादक पदार्थ निरीक्षकों को न केवल गिरफ्तारी की सूचना देनी चाहिए, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 58 में प्रदान किया गया है, बल्कि गिरफ्तारी की सूचना तुरंत अपने वरिष्ठ अधिकारियों को भी देनी चाहिए।"

30. उषाबेन बनाम किशोरभाई चुनीलाल तलपड़ा और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 2(डी) से जुड़े स्पष्टीकरण का जिक्र करते हुए स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि किसी गैर-संज्ञेय अपराध की जांच के बाद एक पुलिस अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट को एक परिवाद के रूप में माना जाएगा और जिस अधिकारी द्वारा ऐसी रिपोर्ट की गई है उसे परिवादी माना जाएगा।

31. चित्तरंजन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य 21 के मामले में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि सीआरपीसी की धारा 2(डी) में "इसमें पुलिस रिपोर्ट शामिल नहीं है" शब्द जांच पूरी होने के बाद सीआरपीसी की धारा 173 के तहत रिपोर्ट को संदर्भित करते हैं, पुलिस अधिकारी द्वारा किसी अन्य रिपोर्ट को नहीं।

32. इसी तरह, चंद्रशा और अन्य बनाम राज्य 22 के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने भी अभिनिर्धारित किया है कि संज्ञेय अपराध पर आरोप पत्र परिवाद नहीं है, यह पुलिस रिपोर्ट है।

33. सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रा) और मद्रास उच्च न्यायालय (सुप्रा) के विद्वान न्यायाधीश द्वारा दिए गए पूर्वोक्त निर्णयों की एक रूपरेखा से, यह काफी स्पष्ट है कि आईपीसी की धारा 188 के तहत दंडनीय अपराध के लिए किसी आरोपी पर मुकदमा चलाने के लिए सीआरपीसी की धारा 195(1)(ए)(आई) के तहत परिकल्पित प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य है अर्थात् संबंधित लोक सेवक या किसी अन्य लोक सेवक जिसके वह अधीनस्थ है, की लिखित शिकायत, अन्यथा आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध का संज्ञान नहीं लिया जा सकता है और यदि इस अनिवार्य प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया जाता है, तो धारा 188 के तहत अपराध के लिए संपूर्ण अभियोजन चलाया जाएगा। सीआरपीसी की धारा 195 के अनुसार आईपीसी शुरू से ही अमान्य हो जाएगी। यह सीआरपीसी की धारा 190 में निहित सामान्य नियम का अपवाद है, जिसमें कोई भी व्यक्ति शिकायत करके कानून को लागू कर सकता है। द.प्र.स धारा 195 के प्रावधान अनिवार्य हैं तथा इसका पालन न करने से पूरी प्रक्रिया शुरू से ही तथा बिना अधिकार क्षेत्र के भी अमान्य हो जाएगी। जैसे, चूंकि आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध का संज्ञान सीआरपीसी की धारा 2 (डी) के अर्थ के तहत संबंधित लोक सेवक द्वारा दायर लिखित शिकायत के आधार पर लिया जा सकता है। आईपीसी की धारा 188 के तहत अपराध संज्ञेय अपराध होने के कारण सीआरपीसी की धारा 2(डी) के साथ जुड़े स्पष्टीकरण से भी बचाया नहीं जा सकता है, जैसा कि सीआरपीसी की धारा 2(डी) के स्पष्टीकरण के अनुसार, पुलिस अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट है। गैर-संज्ञेय अपराध की जांच के बाद केवल शिकायत के रूप में माना जाएगा और शिकायत करने वाले व्यक्ति को शिकायतकर्ता के रूप में माना जाएगा और पुलिस रिपोर्ट या एफआईआर कोई शिकायत नहीं है और इसके अलावा, आरोप पत्र पुलिस अधिकारी की एक रिपोर्ट है। इसलिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट को भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 188 के तहत अपराध हेतु भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 154 के तहत भी दर्ज नहीं किया जा सकता है, क्योंकि



डीबी

अन्वेषण के पश्चात् एफ. आई. आर. का पंजीकरण भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 173 (8) के तहत पुलिस रिपोर्ट में समाप्त हो जाएगा, जिसका मजिस्ट्रेट द्वारा भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 190 के तहत संज्ञान नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि भा.दं.सं. सी. द.प्र.स 188 के तहत अपराध हेतु एफ. आई. आर. का पंजीकरण वर्जित है।

34. राज्य के विद्वान अधिवक्ता के तर्क यह है कि चूंकि भा.दं. सं. की धारा 188 के तहत दंडनीय अपराध एक संज्ञेय अपराध है, इसलिए, पुलिस सूचना पर तुरंत दं. प्र. सं. की धारा 154 के तहत प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज करने के लिए बाध्य है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य 23 का मामला और दं. प्र. सं. की धारा 156(3) और 157 के तहत दिए गए प्रावधानों के अनुसार जांच आगे बढ़ाने को खारिज किया जाना पाया गया है। ऐसा अनुरोध स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि, केवल इसलिए कि भा.दं. सं. की धारा 188 के तहत अपराध संज्ञेय अपराध है, यह अपने आप में पुलिस अधिकारी को ऐसे अपराध के लिए दं. प्र. सं. की धारा 154 के तहत प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज करने के लिए अधिकृत नहीं करता है, इसका कारण यह है कि प्रथम सूचना प्रतिवेदन के पंजीकरण के परिणामस्वरूप दं. प्र. सं. की धारा 173(8) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करना आवश्यक होगा, जो विशेष रूप से दं. प्र. सं. की धारा 2(घ) के सहपठित धारा 195(1)(ए) द्वारा वर्जित है। द.प्र.स धारा 2 (घ) में निहित "परिवाद" की परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि परिवाद में पुलिस रिपोर्ट शामिल नहीं है। अशोक कुमार शर्मा के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने, औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 32 के आलोक में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि ललिता कुमारी (सुप्रा) में निर्धारित सिद्धांत प्रथम सूचना प्रतिवेदन के पंजीकरण पर लागू नहीं हो सकते हैं, औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के तहत अपराध के लिए और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया : "66. हम विचार करते हैं कि यह न्यायालय, उक्त मामले में, अधिनियम के तहत किसी मामले या अधिनियम के तहत समान मामलों पर विचार नहीं कर रहा था, और हम विचार करते हैं कि हमने जो चर्चा की है और दं. प्र. सं. के प्रावधानों और अधिनियम की धारा 32 के परिप्रेक्ष्य पर, ललिता कुमारी (सुप्रा) में निर्धारित सिद्धांत तब आकर्षित नहीं होते हैं जब दं. प्र. सं. की धारा 154 के तहत प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज करना अनिवार्य करने वाले अधिनियम के अध्याय IV के तहत किसी अपराध के घटित होने की सूचना किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष दी जाती है। इस प्रकार, अशोक कुमार शर्मा के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा इस संबंध में निर्धारित विधि के सिद्धांत का पालन करते हुए राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस संबंध में उठाए गए तर्क को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

35. भजन लाल के मामले (सुप्रा) में, सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या दं. प्र. सं. की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही / प्रथम सूचना प्रतिवेदन को रद्द करने के लिए अपनी रिपोर्ट के कंडिका 102 में प्राचल निर्धारित किए, जिसका सुसंगत भाग इस प्रकार है: "102. अध्याय 14 के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों तथा अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की व्याख्या की पृष्ठभूमि में, हम निम्नलिखित श्रेणियों के मामलों



डीबी

को उदाहरण के रूप में देते हैं, जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि किसी भी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित तथा पर्याप्त रूप से निर्देशित तथा कठोर दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना तथा असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) से (5) XXX XXX

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट विधिक रोक है और/या जहां कोई विशिष्ट प्रावधान है संहिता या संबंधित अधिनियम, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।(7) XXX XXX "

36. वर्तमान मामले में, नायब तहसीलदार के आग्रह पर पर भा.दं. सं. की धारा 269 और 188 के साथ-साथ 1897 के अधिनियम की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दं. प्र. सं. की धारा 154 के तहत प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज की गई है, और उपरोक्त कंडिका में संदर्भित मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के सिद्धांतों को लागू करते हुए, **भजन लाल के मामले (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद पुलिस स्टेशन, अंबिकापुर, जिला सरगुजा में दर्ज अपराध क्रमांक 587/2021 की प्रथम सूचना प्रतिवेदन दिनांक 04.07.2021 को रद्द कर दिया गया है।

37. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। इस पर कोई वाद व्यय देय नहीं होगा।

सही/-
(एन.के.चन्द्रवंशी)
न्यायाधीश

सही/-
(रमेश सिन्हा)
मुख्य न्यायाधीश

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।